भूमंडलीकरण और स्वदेशी का बदलता परिदृश्य

बौद्धिक जगत में भूमंडलीकरण और आधुनिकता एक समय विशेष में उपजी अवधारणा बेशक है, पर वास्तव में यह सतत चलने वाली प्रक्रिया है। कभी-कभार यह धीमी ही नहीं, बिल्कुल रुक भी जाती है। समाज कभी पीछे की ओर अंधकार युग में जा-जी रहा होता है, तो कभी उत्तर आधुनिक तथा अत्याधुनिक भी कहलाता है। बीसवीं-इक्कीसवीं सदी में यातायात के तीव्रातितीव्र साधनों तथा दूरसंचार-जनसंचार माध्यमों के व्यापक विस्तार के साथ उन्मुक्त बाजार एवं अबाध व्यापार का रास्ता खुला है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उदय के अलावे उदारीकरण, निजीकरण, औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि प्रवृत्तियों की बुनियाद पर पूरा विश्व एक 'गाँव' का रूप लेता जा रहा है, जहाँ पूँजी और श्रम का आवागमन बढ़ा है। ज्ञान, सूचना, तकनीक, प्रौद्योगिकी आदि के आदान-प्रदान से परस्पर नजदीकी बढ़ी है। असमानता के बावजूद रहन-सहन, खान-पान, पहनावे आदि में कुछ हद तक एकरूपता आई है। जल, जलवायु, पर्यावरण, परमाणु जैसे क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय चिंता के विषय बन गए हैं। भूकंप, अकाल, महामारी, नरसंहार, आतंकवाद जैसी विभीषिकाएँ चाहे छोटी हों या बड़ी, वैश्विक दृष्टि से ओझल नहीं रह पातीं। राजनीति, संस्कृति, शासन पद्धति, ज्ञान इत्यादि पहले से ही वैश्विक संपदा हैं। इन सबकी वजह से सुदूर गावों-कस्बों तक के जनजीवन में काफी बदलाव आया है। यही वैश्वीकरण की प्रवृत्ति है। एंथनी गिड्डिंग ने लिखा है -'भूमंडलीकरण को सामाजिक संबंधों के विश्वव्यापी सघनीकरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो दूर-दूर स्थित स्थानीयताओं को आपस में जोड़ देता है। स्थानीयताएँ एक-दूसरे को प्रभावित भी करती हैं और उनसे प्रभावित भी होती हैं।' ऐसे में लोक जीवन और अनगढ़ स्थानीयताओं को बचाए रखने की चुनौती वास्तविक हो गई है। यह ठीक भी है, क्योंकि विक्टर ह्यूगो के शब्दों में -'Nobody can stop an idea when time has come.' स्वदेशी की भी अवधारणा कई स्तरों पर भूमंडलीकृत हो गई है।

स्वदेशी आंदोलन एक बृहद राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जरूरत की वजह से भारत के स्वतंत्रता संग्राम का आधार-अस्त्र बना था। तब स्वदेशी की सोच वैकल्पिक नहीं, बल्कि उस समय की अनिवार्यता थी, अन्यथा इसके अभाव में असली अंतर-स्वातंत्र्य भाव के प्रस्फुटित होकर पूर्णरूपेण फलीभूत होने में मुश्किलें आतीं। यह देशवासियों में ऐक्य भाव व समानता के लिए भी जरूरी था। स्वदेशी आंदोलन के बड़े सूत्रधार महात्मा गाँधी का मानना था कि यदि किसी के अंदर स्वदेशी की भावना है तो वह अपनी बड़ी से बड़ी आवश्यकताओं की आपूर्ति स्वयं कर लेगा। भारत में जिन चीजों का भारी अभाव है, उन्हें बाहर से मँगाए जाने में गाँधी जी को आपत्ति न थी, बशर्ते यह साबित हो जाए कि भारत अपने दम पर उन चीजों की पूर्ति करने में पूर्णतः असमर्थ है। वे जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करने को उपयोगी और जरूरतों को सीमित रखने को जरूरी मानते थे; स्वदेशी को स्वराज के लिए अनिवार्य कहते थे। उनके स्वदेशी दर्शन विराट थे, पर जमीनी धरातल पर आंदोलन के रूप में यह आरंभ में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर केंद्रित था। यह बहिष्कार भी उनकी होली जलाने और उन्हें छिन्न-भिन्न करने तक पहुँच गया। उस समय विदेशी शासन से मुक्ति के लिए विदेशी चीजों से भी मुक्ति पाना चरम लक्ष्य था। स्वराज हेतु प्रतिबद्धता दर्शाने, जोश-उर्जा भरने व आत्मनिर्भरता के लिए यह जरूरी उपक्रम बन गया। इतना ही नहीं, यह धीरे-धीरे लोगों की रुचि, विवेक, सदाचार, सादगी, संयम, सभ्यता और संस्कृति की विरासत का प्रतीक बनता गया। भारत जो कुछ करने में समर्थ है, वह उसे करना चाहिए। यही नहीं, दुनिया में जहाँ कहीं जो कुछ उन्नत आविष्कार-कार्य हो रहा है, वह सब स्वयं करने का सामर्थ्य अर्जित करना स्वदेशी भाव के अंतर्गत ही आता है।

बहरहाल, अब स्वदेशी के सरोकार काफी बदल गए हैं, इतने कि बहुत लोग उन्हें स्वदेशी की श्रेणी का मानेंगे ही नहीं, भले ही वे व्यवहार में उनसे परहेज कम करते हों। यहीं स्वदेशी के स्वरूप से लेकर औचित्य तक पर सवाल खड़ा होता है। प्रथमदृष्ट्या ही स्पष्ट है कि जो अपने देश का है, वही स्वदेशी है और जो स्वदेशी है, वह स्वदेश का होगा ही। और स्वदेश? यह अमर कोश के अनुसार, हिमालय और विन्ध्य के बीच का भूभाग आयावर्त्त है -'आयावर्त्तः पुण्यभूमिः मध्यं विन्ध्य-हिमालयः।' संपूर्णतः इसी के प्रति प्रेम स्वदेश प्रेम है। पंडित दीन दयाल उपाध्याय का मानना है कि 'स्वदेश के शत्रु और स्वदेशी के शत्रु में कोई अंतर नहीं है।' देश अपने स्वरूप भूगोल, भाषा, संस्कृति, निवासियों, संप्रभु सरकार आदि से पहचाना जाता है। भौगोलिक सीमा जैसे लक्षण में बदलाव होने पर स्वदेश का भाग कभी परदेश, तो परदेश भी कभी स्वदेश बन जाता है; जैसे पाकिस्तान व बंगला देश कभी स्वदेश के हिस्से थे, पर आज परदेश हैं। फिर भी देश की सीमाएँ ही किसी काल में देश को सर्वाधिक इंगित करती हैं, इसके बाद ही चाहे संस्कृति हो या भाषा या फिर निवासी - ये सब देश को

पहचान देते हैं। फिर ये भ्रमित भी कर सकते हैं। स्वदेशी की भावना अपने आप में अमूर्त है, इसलिए देश की एक-एक चीज के प्रति लगाव स्वदेशी है। यहीं अनेक बार ऐसी विकट स्थिति दिख जाती है कि चोट देश की चीजों व कुव्यवस्था से मिलती है और प्रहार देश को झेलना पड़ता है। यही कारण है कि स्वनामधन्य राहुल गाँधी भी जो राजनीतिक सत्ता के शीर्ष पर रहे हैं, वे कह देते हैं कि 'यह कैसा देश है!' देश की कुप्रवृत्तियों का बहुत ज्यादा शिकार होने की दशा में सहसा ऐसा मुँह से निकल जाना अस्वाभाविक नहीं। दिखावटी ही सही, स्वदेश प्रेम का शिष्टाचार निभाना औपचारिक बाध्यता है, इसे चिन्हित करना भी अपेक्षाकृत आसान है, जबकि स्वदेशी की भावना रखने की न कोई बाध्यता है और न ही इसे चिन्हित करना आसान है। इसलिए आजकल बिना स्वदेशी भावना के भी देश के प्रति प्यार उमड़ता देखा जा सकता है।

दुनिया की बहुत सारी चीजें अपने स्वरूप के कारण नहीं, अपितु दूसरों से अपने संबंधों के कारण अच्छी-बुरी कही जाती हैं। उसकी अच्छाई-बुराई हमेशा व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परंपराओं व मान्यताओं के आधार पर ही तय होती है। बावजूद इसके, किसी विचार-दर्शन का उत्कृष्ट स्तर-रूप यही है कि उसे दूसरे से संबंधों के परिप्रेक्ष्य की बजाय अपने स्वरूप व गुण-दोष वाले वैशिष्ट्य के आधार पर मूल्यांकित किया जाए। यहीं प्रश्न उठता है कि स्वदेशी की ग्राह्यता या त्याज्यता क्या केवल स्वदेशी होने के कारण तय हो सकती है? स्वदेशी का मतलब 'अपने देश का' ही हो, तो इसका कोई खास महत्त्व नहीं, क्योंकि बहुत सारी चीजें गुणवत्ताविहीन होने के कारण अपने देश की होकर भी स्वीकार्य नहीं हो सकतीं। इसके बावजूद, एक स्तर पर स्वदेशी की भावना कभी निर्मूल्य नहीं हो सकती, क्योंकि यह कुछ हद तक शाश्वत मनोवृत्ति और दीर्घकालिक विचार-भाव है। कुछ मूलभूत जीवन मूल्य जैसे भोग के लिए जीने की बजाय जीने लिए उपभोग, आत्मनिर्भरता, मिशनरी कार्य-भावना, संयम व सादगी के सौंदर्यतत्त्व इसमें सदैव सन्निहित होते हैं, जिन्हें कभी झुठलाया नहीं जा सकता। स्वदेशी और परदेशी का अंतर 'स्व' और 'पर' के चिर विभेद का ही प्रश्न हैं। 'स्व' का विस्तार ही 'पर' का संकुचन है और 'पर' का विस्तार 'स्व' का सीमा निश्चित करता है। स्वदेशी अस्मिता का अस्तित्व परदेश के वजूद के समानांतर ही टिक पाता है, नहीं तो 'स्व' के अंतर्गत क्या नहीं आता? 'स्व' के अंतर्गत आने वाली चीजें कई बार इतनी दूर भी होती हैं, जितनी 'पर' वाली भी नहीं होतीं। सब कुछ अपना है और कुछ भी अपना नहीं है - यही जीवन का सार है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है -'मेरा घर सर्वत्र सभी स्थानों पर,/लक्ष्य वही है मेरे अन्वेषण का;/मेरा देश सभी देशों में, मुझको/करना है संघर्ष उसे पाने का।' इसलिए दुनिया में जहाँ कहीं भी उत्कृष्ट और अद्भुत है, वह सब अंततः दुनिया की दौलत है। स्वदेशी का प्रश्न मानवहित और समाजहित से जुड़ा है। यहाँ जोर रोजगार पर नहीं रहता, बल्कि जीवनोपयोगी बृहतर कार्य पर रहता है, हालाँकि आजकल ऐसा-वैसा रोजगार-व्यवसाय ही सर्वोपरि है और वह भी सिर्फ और सिर्फ पैसा कमाने के लिए। दूसरी ओर, प्रेमचन्द के मतानुसार, 'जब तक मानव समाज के निर्माण का आधार 'संपत्ति' बनी रहेगी, उस समय तक अंतराष्ट्रीयतावाद का आरंभ हो ही नहीं सकता।' यही कारण है कि एक तरफ नए-नए अकल्पनीय आविष्कारों व कार्यों से दुनिया अभिभूत हो रही है, तो दूसरी तरफ बहुत सारे लोगों को बुनियादी चीजें उपलब्ध नहीं हैं।

पिछले दिनों घड़ी की बैट्री लगाने के सिलसिले में दूकानदार ने पूछा कि जापान वाली चाहिए या चीन वाली? हमने पूछा कि इंडिया में नहीं बनती क्या? तो बताया कि बनती है, पर उसकी कीमत इनसे दुगुनी-तिगुनी है, इसलिए रखते ही नहीं, कौन लगवाएगा उसे? जापान की अपेक्षा चीन वाली सस्ती है, पर अच्छी जापान वाली है। फिर हमने जापान वाली ही लगवाई। इसी प्रकार दिल्ली में निगम पार्षद का चुनाव लड़ चुके एक परिचित मित्र ने बताया कि उनकी बीमारी के समय इंजेक्शन दो-पौने दो लाख रुपए का लगता था, वह भी विदेश से मँगाया जाता था, क्योंकि यहाँ नहीं मिल पाता। अनेक लोग इलाज कराने विदेश जाते हैं और बहुत-सारे विदेशी अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगला देश, नेपाल, म्याँमार आदि देशों से इलाज कराने भारत आते हैं, क्योंकि उन्हें गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सेवा मिलती है। किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार के मूल्यांकन का पैमाना गुण-दोष, गुणवत्ता तथा सुलभता ही होना चाहिए। बेहतरीन उत्पाद देने-लेने में बुराई नहीं है; एक दूसरे के ज्ञान से, खोज से, वस्तु व कार्य से लाभान्वित होना सबकी जिम्मेवारी है। जो जरूरी और ग्रहणीय है, उसे बाहर से भी लेने में परहेज क्यों? बहरहाल, अब स्वदेशी की आकांक्षा का मतलब है कि विश्व में जहाँ कहीं जो कुछ श्रेष्ठ हो रहा है, उसे अपने यहाँ करने का सफल प्रयत्न करें। दुनिया को देखकर ही नहीं, बल्कि बहुत कुछ ऐसा यूनिक तथा मौलिक किया जाना चाहिए, जिसका अनुकरण बाकी दुनिया करे। इसी निकष पर स्वदेशी चेतना का आकलन भी उपयोगी होगा कि कितना नव्यतम विदेशों से लेकर वजह-वेवजह यहाँ आत्मसात कराया जा रहा है और उसके बनिस्बत कितना नवीनतम आविष्कार बाकी विश्व को दिया जा रहा है?